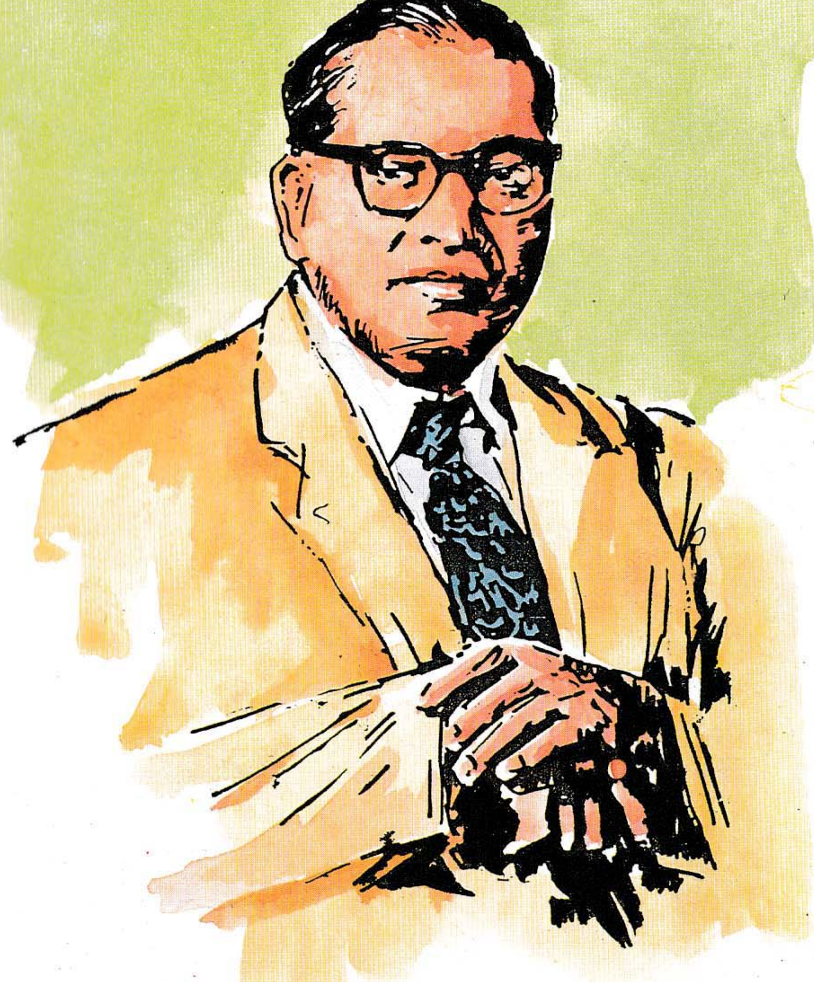
बाबा साहब डा. अम्बेडकर

राहुल सांकृत्यायन





बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर से मिलने का मौका मुझे दो ही बार मिला। पहली बार दिल्ली में कानूनमन्त्री के रूप में उनके घर पर और अंतिम बार नेपाल में, जिसके दो ही महीने बाद यह महापुरुष अपने महान संकल्प को अधूरा रक्खे ही चला बसा। पहली मुलाकात विशेषकर बौद्ध धर्म और उसके ग्रंथों के बारे में बातचीत करने के लिए हुई थी। मैं डॉ. बाबा साहब अम्बेडकर के कार्य को बड़ी उत्सुकता और सम्मान के साथ देखा करता था।

वे अपने व्यक्तिगत अनुभव से जानते थे कि जिस वर्ग में उनका जन्म हुआ है, उसके साथ कितने अत्याचार युगों से हो रहे हैं। सामाजिक ही नहीं, सांस्कृतिक और आर्थिक अत्याचार भी, लेकिन इस व्यक्तिगत अनुभव को उन्होंने अपने निजी बन्धनों को ढीला करने के लिए नहीं इस्तेमाल किया, बल्कि भारतवर्ष के सबसे अधिक उत्पीड़ित वर्ग को सब तरह से उठाने का बीड़ा उठाया। इसमें तो संदेह ही नहीं कि इस वर्ग के लिए बाबासाहब ने जितना कठिन परिश्रम किया, उतना किसी व्यक्ति ने आधुनिक युग में नहीं किया। सच तो यह है कि उन्हीं के भगीरथ प्रयत्न से पहाड़-जैसे बांध में दरार हुई और आगे का रास्ता खुला।

मई 1956 से मई 1957 तक बुद्ध निर्वाण की 25वीं

शताब्दी बड़े जोर-शोर से मनाई गई। लोगों ने और केन्द्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों ने दिल खोलकर इसमें भाग लिया। सरकार ने करोड़ से अधिक रुपये खर्च करके शताब्दी के अवसर पर बौद्ध प्रधान स्थानों में नई इमारतें, सड़कें तैयार करवाई कितने ही विशाल अतिथिगृह बनवाये। बुद्ध सात शताब्दियों से निर्वासित थे। उन्हें पुनः अपने घर में स्वागत के लिए बुलाया जा रहा था। वर्तमान शताब्दी के आरम्भ में इतिहास और अपनी संस्कृति के प्रेम को बड़ी दुस्सह बात मालूम होती थी कि जिसके चरणों की छाप हमारे विस्तृत देश में सब जगह पुरानी मूर्तियों और ध्वंसावशेषों के रूप में मिलती है, उस महापुरुष का लोग नाम तक नहीं जानते थे! जिसके दर्शन की गूंज हमारे दर्शन के संस्कृत ग्रंथों में स्पष्ट सुनाई देती थी, उसकी वाणी का हमारे यहाँ कोई पता नहीं था! जिसके उपदेशों से प्रेरित



बाबा साहब डॉ. भीमराव अम्बेडकर

होकर भरहुत और साँची की सौंदर्यमय मूर्तियां निर्मित हुईं, जिसके आदर्श पर जीवन समर्पित करने वालों के लिए कारला, भाजा आदि के भव्य गुहागार बने, वह उपेक्षित और सूने-सूने थे! पिछली आधी शताब्दी तक शिक्षित और सुसंस्कृत भारतीय जिस अभाव को बड़े दुःख के साथ देख रहे थे उसकी एक अंश में पूर्ति हो रही थी, इसीलिए वह पच्चीसवीं शताब्दी के महोत्सव में दिल खोलकर भाग ले रहे थे।

पच्चीसवीं निर्वाण शताब्दी का फल बौद्ध तीर्थस्थानों में इमारतों के खड़े होने, बुद्ध पर ग्रन्थों के प्रकाशित होने तथा जुलूसों और सभाओं तक ही सीमित नहीं रहा। इस एक वर्ष के भीतर भारत में आधा करोड़ लोग बौद्ध हो गये, यह जादू चमत्कार जैसा था। जहाँ बुद्ध और बौद्धों का नाम पढ़कर कभी-कभी लोग मन बहलाव कर लेते थे, वहीं लाखों के जुलूस में 'भगवान बुद्ध की जय' का नारा लगने लगा। एक आगरा शहर ही में पच्चीसों छोटे-बड़े बुद्ध मन्दिर बन गये। हजारों नौजवानों ने अपने धर्म-ग्रन्थों का अध्ययन शुरू किया, अपने विस्तृत इतिहास को जीवित रखने के लिए तैयारी शुरू की। महापुरुष बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने धम्म-चक्र-प्रवर्तन की पुनरावृत्ति की; जबकि नागपुर (महाराष्ट्र) में उनके साथ पाँच लाख नर-नारियों ने त्रिशरण, पंचशील से बुद्ध के धर्म की दीक्षा ली।



डॉ. अम्बेडकर परिवार के साथ



डॉ. अम्बेडकर व पेरिअर रामास्वामी (1944)

मैं नवम्बर 1956 का वह दिन नहीं भूल सकता, जब नेपाल में बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने बड़े भावावेश में; पर गम्भीरता के साथ घोषित किया—दो वर्ष और जीवन रहा तो भारत के पाँच करोड़ बौद्ध दिखा दूँगा। हजार अफसोस कि वह संकल्प पूरा नहीं हुआ। उस समय भी वह शरीर से बेकाबू थे। लेकिन कौन सोच सकता था कि दो महीना भी पूरा नहीं होगा, और बाबा साहब को अपना संकल्प पूरा किए बिना जीवन समाप्त करना होगा।

इसमें कोई संदेह नहीं कि बौद्ध-समाज की भारत में सात सौ वर्षों के बाद इस ठोस प्रतिष्ठा में सबसे बड़ा हाथ बाबा साहब का है। इतिहास उन्हें कभी भुला नहीं सकेगा। पिछली आधी शताब्दी में सैकड़ों शिक्षित-सुसंस्कृत पुरुष हमारे देश में हुए, जिन्हें बौद्ध धर्म का अभाव बहुत खटकता था। वे ठण्डी साँस लेकर कहते थे—क्या वह बौद्ध समाज हमारे देश में फिर नहीं आयेगा, जिसकी महिमा फाहियान, हुएनसांग और इ-चिङ् के यात्रा ग्रंथों में मिलती है! व्यक्तिगत तौर से उनमें से कितने ही बौद्ध बने। जिसके ऊपर एक बार बुद्ध-वाणी और उससे प्रेरित कला तथा संस्कृति की छाप पड़ गई, वह जीवन भर उसके मन से मिटने वाला नहीं है।

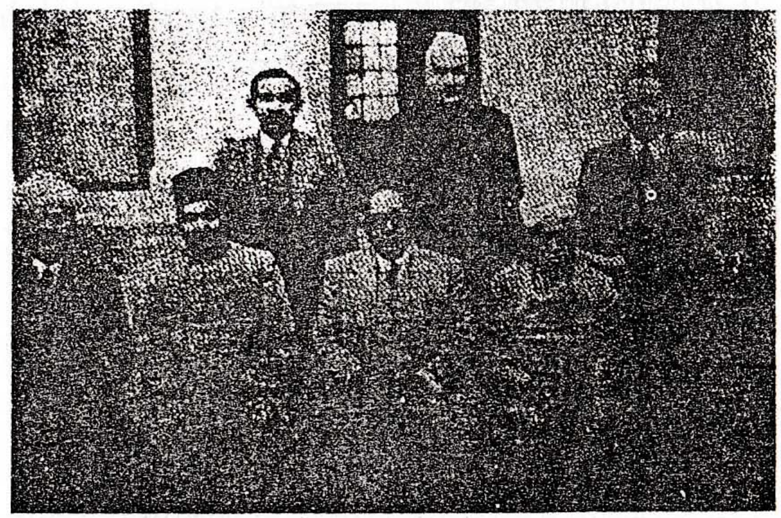
डॉ. अम्बेडकर के पास दूसरे धर्मों की तरह बौद्ध धर्म भी अपनी पुस्तकों के रूप में आ पहुँचा। 1260-70

ई. स. में कुबले खान को अपने धर्म में करने के लिए दुनिया के दीन और मजहब दौड़ पड़े थे, वही बात डॉ. अम्बेडकर के लिए हुई थी। कुबले खान को अन्त में लामा फग्स-पा बौद्ध धर्म की ओर आकृष्ट करने में सफल हुए। डॉ. अम्बेडकर के पास कोई लामा फग्स-पा जैसा महाविद्वान बौद्ध आचार्य नहीं पहुँचा। बौद्ध धर्म की पुस्तकें जरूर उनके पास गईं। बाबा साहब ने उनका अध्ययन, गम्भीर अध्ययन किया, इसमें कोई संदेह नहीं। तभी तो जब पार्लियामेंट में डॉ. अम्बेडकर की किसी बात पर व्यंग्य करते हुए किसी संसद सदस्य ने कहा, "आपकी आत्मा को शान्ति मिले!" तब उन्होंने जवाब दिया, "मैं बौद्ध हूँ। मैं आत्मा को नहीं मानता।" बौद्ध अनात्मवाद को समझ पाना किसी भी दूसरे धर्म के लिए अत्यन्त कठिन काम है। आत्मा और ईश्वर से भी इंकार करना किसी धार्मिक विश्वास के आदमी के लिए असंभव सा मालूम होता है।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर धर्म को केवल व्यक्तिगत दृष्टि से नहीं देखते थे। वह उसे अपने करोड़ों उन भाइयों की दृष्टि से देख रहे थे, जो कि मानव के प्रत्येक अधिकार से हजारों वर्ष वंचित रहे। उन्हें मानवोचित अधिकार मिलना चाहिए, इसके लिए ईसाई गारंटी देने को तैयार थे। वह लाखों-लाख रुपया खर्च कर सकते थे। बाहर के शक्तिशाली पश्चिमी देशों की सहानुभूति



डॉ. अम्बेडकर व राव बहादुर शिवराज व श्रीमती शिवराज 1942 में समता सैनिक दल सम्मेलन में



डॉ. अम्बेडकर, भारतीय संविधान कमेटी के अध्यक्ष के रूप में अन्य सदस्यों के साथ

और सहायता उनके लिए सुलभ थी। पर डॉ. अम्बेडकर सुशिक्षित, सुसंस्कृत गम्भीर विचारक थे। वह ब्राह्मणशाही और हिन्दू संस्कृति को एक नहीं समझते थे।

हिन्दू संस्कृति भारत की संस्कृति है, जिसके विकास में भारत के प्रत्येक समुदाय, प्रत्येक वर्ग ने भाग लिया है। तथाकथित हरिजनों का भी उसके विकास में कम हाथ नहीं है। आज ब्राह्मण और ऊँची जाति के लोग अपने को बड़ा और अछूतों को छोटा भले ही कहें, लेकिन दोनों के रक्त में अब कोई अन्तर नहीं रह गया है। पुरानी कहावत के अनुसार 'काला बामन गोरा चमार' असम्भव समझे जाते थे। हजारों वर्ष पहले भले ही यह असम्भव समझा जाता हो, लेकिन आज हजारों लाखों काले ब्राह्मण मिलेंगे और हजारों-लाखों गोरे चमार। ब्राह्मणों ने वर्ण व्यवस्था के लिए बड़े जबरदस्त बाँध बाँधे। अपनी जात से बाहर ब्याह करना सर्वथा निषिद्ध ठहरा दिया। इसी के बल पर वह यह घोषणा करते थे—'हमारा वर्ण शुद्ध है, हमारा रक्त शुद्ध है।' बौद्ध विचारकों ने आज से डेढ़ हजार वर्ष पहले, उनका जवाब दिया था—'वर्ण या जाति की शुद्धि केवल स्त्री के हाथ में है। अगर वह शुद्ध रहने दे तभी जाति शुद्ध रह सकती है। और तुम स्वयं कहते हो कि स्त्री का कोई विश्वास नहीं—स्त्रियः अशास्य मनः। फिर तुम्हारी जाति की शुद्धता पर कैसे विश्वास किया जाये!

हाँ तो ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और अछूत का भेद अब केवल कहने-भर का है। ब्राह्मणशाही अंधेरगर्दी बहुत दिनों तक नहीं चल सकती। हमारा सारा राष्ट्र एक राष्ट्र और एक जाति बनकर रहेगा। इसलिए कल अवश्यम्भावी नष्ट होनेवाली वर्ण-व्यवस्था के लिए हमें भारतीय संस्कृति को नहीं फेंकना चाहिए—वह स्नानपात्र के साथ बच्चे को फेंकने जैसा होगा।

अपनी संस्कृति के स्नेह ने ही डॉ. अम्बेडकर को ईसाई और इस्लाम और धर्म को स्वीकार करने के लिए तैयार होने नहीं दिया, यद्यपि, दोनों की तरफ से उन्हें अपनी ओर खींचने के लिए भारी प्रयत्न हुए थे।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने निश्चय कर लिया था, हमें अपनी संस्कृति की सीमा से बाहर नहीं जाना है, पर साथ ही ब्राह्मणशाही के सामने भी सिर झुकाना नहीं है। आर्यसमाजी ब्राह्मणशाही से दूर नहीं थे, जैन और सिख भी उसके लपेटों में आ गये थे। उनके अनुयायियों की दृष्टि से अछूत अछूत ही था। बौद्ध धर्म पर जब बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की गम्भीर दृष्टि पड़ी तो सचमुच ही उन्होंने उल्लास में आकर कहा होगा—'वह चीज मिल गयी, जिसे मैं ढूँढ रहा था। बल्कि जितना चाहता था, उससे भी अधिक मात्रा में मिली।' बौद्ध धर्म बहुत उदार है। सामाजिक दृष्टि से वह वर्ण-भेद, देश-भेद को नहीं मानता। बुद्ध सबसे बड़े प्रथम जनतंत्रवादी थे,

विचारक थे। उनके समय कोसल, मगध, अवन्ती के विशाल राजतंत्र थे, पर उनका पक्षपात वैशाली के गणतंत्र से था।

डॉ. अम्बेडकर ने देखा जिस जनतांत्रिकता के नीचे हमारे दलित वर्ग को ऊपर उठाने की सम्भावना है, बुद्ध उसके परम समर्थक थे। जनतंत्रता का केवल वोट या सम्मतिग्रहण में ही नहीं, बल्कि आर्थिक क्षेत्र में भी बुद्ध ने व्यवहार करने की कोशिश की, इसीलिए भिक्षु-भिक्षुणियों में निजी सम्पत्ति का निषेध किया। यहाँ पूरे साम्यवाद की स्थापना की। संघ में चाण्डाल हो अथवा ब्राह्मण, दोनों में किसी प्रकार का अन्तर (भेद) रखना वर्जित था। चीनी यात्री उल्लेख करते हैं कि जब वह भारत के किसी विहार में जाते तो स्थानीय भिक्षु स्वागत करते हुए पहला सवाल यही करता—"आप कितने वर्ष के हैं?" वर्ष का मतलब भिक्षु बनने के साल से था। यदि आगन्तुक के वर्ष अधिक तो स्थानिक भिक्षु दाहिना कन्धा खोलकर उकड़ूँ बैठ दोनों हाथ जोड़ कर प्रणाम करता। यदि स्वयं के वर्ष अधिक होते, तो अपने वर्ष बतलाता और आगन्तुक उसी तरह उसे प्रणाम करता। संघ में यह समानता का व्यवहार प्रभावित किए बिना नहीं रह सकता। जब वह देखता है कि एक कोयले-जैसे भिक्षु को कपूर-जैसा गोरा आदमी उकड़ूँ बैठकर प्रणाम करता है, चाण्डालपुत्र महास्थिर के सामने बैठकर ब्राह्मण महाशाल-पुत्र विद्या ग्रहण कर

रहा है।



बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर की दूरदर्शिता में किसी को संदेह नहीं हो सकता। उन्होंने हिन्दू संस्कृति के अवांछनीय तत्व को निकाल फेंका, पर उसके असली भाव और रूप को हाथ से जाने नहीं दिया। हाँ, हिन्दू किसी धर्म विशेष का नाम नहीं, यह हमारे देश और उसकी हजारों वर्ष व्यापिनी संस्कृति का नाम है। सिन्धु, नदी को कहते थे। सरस्वती (कुरुक्षेत्र), सतलज, विपाश (व्यास), परुष्णी (रावी), असिकनी (चनाब) और सिंध—इन सात सिन्धुओं (नदियों) का देश वैदिककाल में 'सप्तसिंधु' कहलाता था। ईरानी 'स' का उच्चारण 'ह' करते थे। इस प्रकरा 'सप्तसिन्धु' उनकी भाषा में 'हप्तहिन्धु' हो गया। इसी हिन्दू शब्द को 'ह' का उच्चारण न कर सकने के कारण ग्रीको (यूनानियों) ने 'इन्द' या 'इन्दू' कर दिया। उन्हीं

के द्वारा सारे विश्व में फैलकर आज हमारे देश का नाम इन्दू (इण्डिया) कहा जाता है। रूसी हरेक भारतवासी को इन्दुस कहते हैं, जापानी 'इन्दाजन' कहते हैं, चीनी में भी 'इन्दु' नाम हजारों वर्षो से प्रचलित है।

डॉ. अम्बेडकर ने बीस वर्ष की अपनी सेवाओं द्वारा अपने लोगों के हृदय में ऊँचा स्थान प्राप्त किया, जिसके कारण वे उनके पीछे-पीछे बौद्ध धर्म में सम्मिलित होने के लिए तैयार हुए। पूछा जा सकता है--क्या एक व्यक्ति ऐसे परिवर्तन का कारण था? परिवर्तन के कारण और भी थे, इसमें शक नहीं, लेकिन एक योग्य नेतृत्व की आवश्यकता थी, जिसका काम बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने पूरा किया। पच्चीसवीं शताब्दीवाले वर्ष में जैसा कि मैंने पहले कहा, आधे करोड़ के करीब आदमी बौद्ध-धर्म में बड़े उत्साह से दीक्षित हुए।

हमारे देश ने स्वतंत्रता क्यों खोयी? गांधीजी ने एक बार कहा था--"अपने करोड़ों भाइयों को अछूत बना रखने के कारण।" उनके इस वाक्य में सत्यता का बहुत बड़ा अंश है। राष्ट्र को छूत-अछूत में बाँटकर राष्ट्र की शक्ति को ब्राह्मणशाही ने क्षीण कर दिया। यह विभाजन छूत-अछूत तक ही नहीं रहा, बल्कि छूत माने जानेवालों में भी बड़ी जाति और छोटी जाति का भेद कायम कर दिया गया। बड़ी जाति सारी सम्पत्ति और सुभीतों की अधिकारिणी बन गयी, छोटी जाति छूत-अछूत दोनों



जिम्मेवारी का अहसास

अधिकारों से वंचित हो गई। अधिकारवंचित बहुसंख्य समाज देश को विदेशियों के आक्रमण से बचाने लायक भी नहीं रह गया। ऊपर से नीचे और दाहिने से बाएँ चारों ओर इस तरह फूट में पड़ी हमारी जाति वीरता, निर्भीकता आदि गुणों के रहते भी परतंत्र बनने से नहीं बच पाई। कोई देश सुसंस्कृत और मुक्त केवल मुठ्ठी

भर आदमियों के शिक्षित और साफ-सुथरे रहने से नहीं बन सकता। कोट-पतलून और कारवाले कुछ थोड़े से लोग विदेशी यात्रियों के मन में हमारे देश का अच्छा प्रभाव नहीं डलवा सकते, जबकि हमारे शहरों और गाँवों में नंगे-भूखे करोड़ों आदमियों को वह अपनी आँखों देखते हैं। जब तक हमारे यहाँ की अशिक्षा, भुखमरी और हद दर्जे की गरीबी दूर नहीं होती, तब तक हमारे देश का न सम्मान बाहरी देशों में बढ़ सकता है, और न वह वस्तुतः इतनी शक्ति संचय कर सकता है कि उसकी तरफ कोई लालच भरी दृष्टि से देख सके।

आधे करोड़ के करीबन नवदीक्षित बौद्ध अछूत-अनुसूचित जातियों में से हैं। उन्हें शिक्षा और नौकरी के सुभीते अब तक प्राप्त थे। बाबा साहब के जीवन में ही बड़ी जातिवालों ने कहना शुरू कर दिया था कि बौद्ध हो जाने के कारण इन्हें अनुसूचित जाति का नहीं कहा जा सकता, इसलिए शैक्षणिक और अन्य सुविधाएँ नहीं मिलनी चाहिए।

बाबा साहब डॉ. अम्बेडकर ने कहा था—"जिस तरह लड़कर मैंने ये सुभीते अपने लोगों के लिए प्राप्त किए हैं, उसी तरह मैं उनसे वंचित करने पर लड़ूँगा और अपने लोगों को इन सरकारी शैक्षणिक और अन्य सुविधाओं से वंचित नहीं होने दूँगा।"

●●●

मुद्रक : सुधा आफसेट प्रेस, दिल्ली-110092